04 लोकतंत्र के लिए शिक्षा – स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षा की प्रासंगिकता

अंजलि नरोन्हा



सामाजिक विज्ञान दुनिया भर के स्कूलों में किसी न किसी रूप में पढ़ाया जाता है। कभी इसे पर्यावरण अध्ययन कहा जाता है, जैसा कि भारत के मौजूदा प्राथमिक स्कूलों में, कभी–कभी यह – इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र – के रूप में माध्यमिक स्कूल तक और फिर इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र के रूप में हाईस्कूल में पढ़ाया जाता है। आजकल कई देशों में यह 'नागरिक शिक्षा' या फिर 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन' नाम से जाना जाता है, जैसा कि भारत में भी है। कुछ देशों में, और कुछ परिस्थितियों में सामाजिक अध्ययन नाम का विषय भी पढ़ाया जाता रहा है और कुछ वैचारिक दृष्टियाँ ऐसी हैं जो इतिहास व भूगोल को सामाजिक विज्ञानों से अलग रखते हुए उन्हें पृथक विषय मानती हैं, जबकि अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र को वे सामाजिक विज्ञानों का हिस्सा मानती हैं। इस लेख के उद्देश्य को मद्देनजर रखते हुए मैं इस मुद्दे को आगे नहीं बढ़ाऊँगी।

सामाजिक विज्ञान से मेरा अर्थ है वे सभी विषय जो समाज और सामाजिक जीवन के कुछ या सभी पहलुओं को किसी न किसी चश्मे से देखते हुए किए जाने वाले उनके विश्लेषण से ताल्लुक रखते हों। इस प्रकार, इतिहास सामाजिक विज्ञान का हिस्सा है क्योंकि उसमें समाज के विभिन्न पहलुओं में निरन्तरता और बदलावों का, तथा समय के साथ–साथ उनके बनते–बदलते अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण होता है; भूगोल में देश–दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों का विश्लेषण होता है; अर्थशास्त्र में आर्थिक पक्षों का विश्लेषण करने के लिए सिद्धान्तों व पद्धतियों को विकसित व लागू किया जाता है; समाजशास्त्र में यही सब सामाजिक पहलुओं के लिए होता है और राजनीति विज्ञान, जिसमें यही राजनैतिक पहलुओं के लिए होता है। प्राथमिक स्कूली स्तर तक, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान पृथक विषयों की तरह से नहीं पढ़ाए जाते पर किसी न किसी तरह से ये नागरिकशास्त्र, नागरिकता शिक्षा या सामाजिक व राजनैतिक जीवन जैसे विषयों के साथ ही समेकित कर दिए जाते हैं।

हम सामाजिक विज्ञानों को किस तरह समझते हैं, इसका विचार किए बगैर अक्सर पालकों के मन में और आमतौर पर समाज के भीतर भी यह सवाल उठता है कि क्या आज की तकनीकतंत्रीय दुनिया में लोगों की जिन्दगी में सामाजिक विज्ञान की कोई प्रासंगिकता है भी या नहीं। लोग पूछते हैं कि उच्चतर माध्यमिक या फिर कॉलेज स्तर पर सामाजिक विज्ञान का कोई विषय चुनने की स्थिति में हमारा बच्चा आगे क्या करेगा ? उसके सामने नौकरी की क्या सम्भावनाएँ होंगी? स्कूल या कॉलेज में शिक्षक बनने की, शोधकर्ता या अध्येता बनने की, या फिर प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से किसी सरकारी सेवाक्षेत्र में जाने की ? या फिर वह किसी प्रबन्धन क्षेत्र में जाए, खासतौर पर मानव संसाधन प्रबन्ध के क्षेत्र में। ये सारे विकल्प तो इंजीनियरिंग के स्नातकों और मेडीकल के छात्र–छात्राओं के लिए भी खुले होते हैं तो फिर सामाजिक विज्ञान के विषयों को क्यों चुनें जब तथाकथित तकनीकी क्षेत्रों के विकल्प खुले हुए हैं ?

यह दृष्टिकोण ऊपर से शुरू होकर रिसते हुए नीचे की कक्षाओं में भी पहुँच जाता है जहाँ विद्यार्थियों (और पालकों) का रवैया सामाजिक विज्ञानों में पास भर हो जाने का होता है। बिरले ही यह बात पूछी जाती है कि किस तरह सामाजिक विज्ञान विद्यार्थी को बेहतर व्यक्ति बनाने में योगदान दे सकता है, या उनमें इतनी सामर्थ्य पैदा कर सकता है कि वे समाज की बेहतरी में योगदान दे सकें, या कि सामाजिक विज्ञानों के स्कूली अध्ययन व अध्यापन द्वारा किसी लोकतंत्र को बनाए रखने व उसे और विकसित करने में किस तरह से मदद मिल सकती है। कॉलेज स्तर पर सामाजिक विज्ञान में विशेषज्ञता हासिल करने को, स्कूली स्तर पर मिलने वाली सामाजिक विज्ञान की अनिवार्य शिक्षा से अलग करके देखे जाने की जरूरत है।

> “*केवल एक खास तरह के सचेतन प्रयास (जिसमें शिक्षा भी शामिल है) के द्वारा ही लोकतंत्र को सिद्धान्त से हकीकत बनाने के लिए जरूरी आचरण, योग्यता और मूल्य विकसित किए जा सकते हैं और बच्चों के मानस में बैठाए जा सकते हैं।*”

यह सब कह चुकने के बाद, मैं अब इस लेख में, स्कूली सामाजिक विज्ञान शिक्षा की विषयवस्तु तथा उसे पढ़ाने की पद्धति की आज के दौर में प्रासंगिकता पर ध्यान केन्द्रित करूँगी जिसमें नागरिक शास्त्र/नागरिकता शिक्षा/सामाजिक व राजनैतिक जीवन जैसे विषयों का खास हवाला होगा। मेरा मुख्य ध्यान लोकतंत्र के निर्माण

में, उसे बनाए रखने में और विकसित करने में सामाजिक विज्ञान की शिक्षा की प्रासंगिकता पर रहेगा। ऐसा करते वक्त, मैं सामाजिक विज्ञान शिक्षा को समाज की वर्तमान शक्ति संरचना तथा उसके ऊँच–नीच वाले, सामन्ती और विशिष्टता वाले रवैयों से भरे आचरण की नैतिक धारणाओं, जिन्हें खुद शिक्षकों व पालकों ने ही वैधता प्रदान की है, से मिलने वाली चुनौतियों को चिन्हित करूँगी।

लोकतंत्र के लिए शिक्षा के रूप में सामाजिक विज्ञान शिक्षा

लोकतांत्रिक समाज इस अर्थ में काफी हद तक 'विकसित' समाज होते हैं कि वे व्यक्ति विशेष से व्यवहार रूप में कुछ निश्चित तौर–तरीकों, नैतिकता, क्षमताओं और योग्यता की माँग करते हैं जिसके लिए मनुष्यों में मौजूद ऐसी नैसर्गिक प्रवृत्तियों के बहुत अधिक उदात्तीकरण की जरूरत होती है जो कि ऊपर लिखी बातों के प्रतिकूल हों; ताकि लोकतंत्र का सिद्धान्त वास्तव में लोकतंत्र की हकीकत बन जाए। केवल एक खास तरह के सचेतन प्रयास (जिसमें शिक्षा भी शामिल है) के द्वारा ही लोकतंत्र को सिद्धान्त से हकीकत बनाने के लिए जरूरी आचरण, योग्यता और मूल्य विकसित किए जा सकते हैं और बच्चों के मानस में बैठाए जा सकते हैं।

यदि इतिहास पर गौर किया जाए तो आधुनिक लोकतंत्र, असमान शक्ति–समीकरणों और कुछ लोगों के हाथों में सत्ता के केन्द्रीकरण के खिलाफ संघर्ष के रूप में उभरा था जिसने समकालीन ऊँच–नीच वाले सामन्ती और अधिकारवादी ढाँचों को चुनौती दी। अब इसे अक्सर उन्हीं लोगों के बीच प्रचलित, उनके द्वारा अवचेतन रूप से आत्मसात कर लिए गए वर्ग–आधारित मूल्यों, नीतियों और आचरणों से चुनौती झेलना पड़ती है जिन्होंने खुद ही सबसे पहले लोकतांत्रीकरण की माँग में भागीदारी की थी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि खुद हमारा सामाजीकरण एक ऐसी वृहद् ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा है, जो असमानताओं व वर्गीकरणों को योग्यता में अन्तरों या 'ईश्वर प्रदत्त' भाग्य का नाम देकर वैधता प्रदान कर देती है। और सम्भवतः इसका मूल प्रत्येक व्यक्ति की खुद की सराहना की तथा दूसरों की जिन्दगी पर नियंत्रण की जन्मजात चाहत में भी छुपा हुआ है। इसलिए, व्यवहार में जितना संघर्ष सामाजिक क्षेत्रों व प्रक्रियाओं में लोकतंत्र की स्थापना करने का है उतना ही संघर्ष इसे व्यक्तियों के भीतर स्थापित करने का भी है। इस संघर्ष को ही कक्षाओं के भीतर और शैक्षणिक अनुभवों में जगह दिए जाने की जरूरत है। यह कैसे होगा, इसकी चर्चा करने से पहले आइए हम इस टेढ़े–मेढ़े मार्ग से लौटकर यह देखें कि वे कौन से सिद्धान्त हैं जिन पर लोकतंत्र आधारित होता है।

समानता : यह लोकतंत्र का केन्द्रीय और सबसे प्रमुख विचार है। लोकतंत्र में सभी व्यक्तियों को एक समान मानकर व्यवहार किया जाता है – एक व्यक्ति, एक मत का सिद्धान्त समानता के इसी सिद्धान्त पर आधारित है। हालाँकि, हम सभी जानते हैं कि व्यावहारिक रूप से अधिकतर लोकतांत्रिक समाजों में इस राजनैतिक समानता को आर्थिक व सामाजिक समानता का साथ नहीं मिलता है। वस्तुतः, आर्थिक व सामाजिक असमानता के कारण संविधान के द्वारा सिद्धान्त रूप में प्रदत्त 'राजनैतिक समानता' प्रतिकूल ढंग से प्रभावित होती देखी जाती है। सामाजिक विज्ञान की ऐसी शिक्षा जो सभी क्षेत्रों में समानता लाने का प्रयास करे, और जिससे समाज में ऐसे आचरणों का विकास हो जो अलगाव या भेदभाव पैदा करने वाली नीतियों को चुनौती दे सकें। उदाहरण के लिए, मूल्य चुकाने की सामर्थ्य पर निर्भर भेदभावपूर्ण स्वास्थ्य व शैक्षणिक सुविधाएँ, या ऐसे सम्भ्रान्त सार्वजनिक स्थानों जैसे हवाईअड्डों और होटलों से ऑटो रिक्शा जैसे यातायात साधनों का दूर रखा जाना, या उन लोगों के विरुद्ध कार्यवाही की माँग करना जो विभिन्न जातियों तथा वर्गों के आपस में मिलने–मिलाने, शादी–विवाह करने आदि को हिंसा द्वारा रोकते हैं, इत्यादि। इस तरह के आचरणों का विकास एक महत्वपूर्ण नागरिक समुदाय के लिए आवश्यक है। सभी के प्रति एक–सा आदर भाव लोकतंत्र के विचार का अभिन्न हिस्सा है।

न्याय : समानता के सिद्धान्त से ही सभी के लिए समान न्याय का सिद्धान्त निकलता है, भले ही समाज में व्यक्तियों के 'दर्जे' अलग–अलग हों। यह नहीं चलेगा कि कुछ लोग काफी कुछ ऐसा करके बच निकलें जिसे 'आधिकारिक' रूप से गलत माना जाता है।

स्वतंत्रता : लोकतंत्र का एक अन्य बुनियादी सिद्धान्त है सभी व्यक्तियों की स्वतंत्रता। इसीलिए कोई भी लोकतांत्रिक संविधान जैसे कि भारतीय संविधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, देश में कहीं भी आने–जाने की स्वतंत्रता, भिन्न–भिन्न धर्मों को मानने की स्वतंत्रता आदि को सुनिश्चित करता है। एक अन्तर्निहित मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति उसकी खुद की 'स्वतंत्र इच्छा' का उत्पाद होता है। हालाँकि, जैसा कि हम सब जानते हैं समाज में शान्तिपूर्ण ढंग से रहने के लिए, हमें अपनी–अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं को इस ढंग से सीमित करना पड़ता है कि वे दूसरों की स्वतंत्रताओं का अतिक्रमण न करें। लेकिन फिर भी यह किसी एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच की बात नहीं है कि किस सीमा तक किसी स्वतंत्रता को कम किया जाए – बल्कि यह सबको मिलने वाली अलग–अलग स्वतंत्रताओं के बारे में एक सामूहिक धारणा की बात है।

भागीदारी : लोकतंत्र के बारे में सबसे ज्यादा उद्धृत उद्धरण

अब्राहम लिंकन के गैटिसबर्ग उद्बोधन से लिया गया है जो लोकतंत्र को 'जनता की, जनता के द्वारा, जनता के लिए सरकार' के रूप में परिभाषित करता है। इसलिए, लोकतंत्र में नागरिकों की भागीदारी के द्वारा ही नीतियों व कानूनों का निर्माण, उनकी समीक्षा तथा संशोधन किया जाता है। यदि नागरिकों का रवैया बेहतर और ज्यादा प्रासंगिक नीतियों की रचना की प्रक्रिया में खुद शामिल होने और भागीदारी करने का 'सिरदर्द उठाने का नहीं है', तो खतरा यह रहता है कि ऐसी नीतियों व कार्यक्रमों का फल केवल उन चन्द लोगों को मिलेगा जो इसमें भागीदारी करते हैं।

> *इसलिए, व्यवहार में जितना संघर्ष सामाजिक क्षेत्रों व प्रक्रियाओं में लोकतंत्र की स्थापना करने का है उतना ही संघर्ष इसे व्यक्तियों के भीतर स्थापित करने का भी है। इस संघर्ष को ही कक्षाओं के भीतर और शैक्षणिक अनुभवों में जगह दिए जाने की जरूरत है।*

लोगों का प्रतिनिधित्व तथा उनके प्रति उत्तरदायित्व : आधुनिक लोकतंत्र प्रत्यक्ष लोकतंत्र न होकर प्रतिनिधित्व पर आधारित होते हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष लोकतंत्रों के हिसाब से राष्ट्र बहुत बड़े होते हैं। इस तरह यह जरूरी है कि लोग प्रतिनिधिक नेतृत्व का 'सही' अर्थ समझें, जो कि लोगों के मत द्वारा चुने गए प्रतिनिधि का 'शासन' नहीं होता बल्कि उन लोगों के प्रति उसका उत्तरदायित्व व जवाबदेही होती है जिन्होंने उसे नेता चुना। इसका अर्थ हुआ कि नेतृत्व बेलगाम नहीं होता तथा जो चाहे वह नहीं कर सकता। उसे संविधान द्वारा, नीतियों द्वारा और नागरिकों की सक्रिय तथा समालोचनात्मक भागीदारी द्वारा सीमित किया जाता है।

यदि ये सब एक स्वस्थ और सुदृढ़ लोकतंत्र के आधार हैं तो फिर जरूरी है कि नागरिक :

- सभी लोगों को समान नजर से देखें,
- ऐसे मामलों को उठाने की क्षमता रखें जहाँ लोगों से असमान व्यवहार किया जा रहा हो,
- गलत बातें सुधारने के तरीके ढूँढ़ने की कोशिश करने का रवैया रखें, न कि ऐसी बातों के प्रति उदासीन या दुनियादारी वाला मतलबी रवैया रखने का,
- नीतियों, नियमों व कानूनों का समीक्षात्मक ढंग से विश्लेषण कर सकें क्योंकि इनसे लोग प्रभावित होते हैं,
- विवादों को एक साथ मिलकर सुलझाने के तरीके ढूँढ़ सकें, परस्पर सहयोग हेतु जरूरी योग्यताएँ विकसित करने के, तथा साथ मिलकर काम करने के ढंग तलाश सकें, और
- संवाद – यानी दूसरे लोगों के दृष्टिकोणों को सुनना–समझना व सर्वसम्मति बनाना आदि – की क्षमताएँ विकसित कर सकें।

सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम और उसकी कक्षा के लिए इस सबका क्या आशय हुआ?

इसके निहितार्थ पाठ्यक्रम और कक्षा शिक्षण, दोनों के लिए हैं। सामाजिक विज्ञान शिक्षा के माध्यम से ऊपर उल्लिखित गुण विकसित करने के लिए बच्चों को ऐसे समतावादी सामूहिक तरीकों की मदद से विवादास्पद मुद्दों के समीक्षात्मक विश्लेषण करने का अनुभव मिलना चाहिए जिनसे वे विविधता तथा दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान करना सीखें। साथ ही उन्हें सहयोगात्मक तरीके से काम करने के मौके भी मिलना चाहिए। ऐसे अनुभव के माध्यम से ही वे समानता, सभी के लिए सम्मान तथा लोकतांत्रिक न्याय के आदर्श विकसित कर पाएँगे और अपने भीतर यह दृढ़ विश्वास पैदा कर पाएँगे कि लोकतांत्रिक कार्यवाही के द्वारा स्थितियों को बदलकर बेहतर बनाया जा सकता है।

ऐसी प्रक्रियाओं को समकालीन सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के साथ ठोस ढंग से काम करके विकसित किया जा सकता है, और ऐसे समीक्षात्मक चश्मे की मदद से इतिहास व भूगोल की समझ पैदा की जा सकती है। यह ठोस काम अध्ययन, चिन्तन, चर्चाओं और अनुभव के द्वारा किया जा सकता है।

भारतीय स्कूलों में पारम्परिक सामाजिक विज्ञान शिक्षा का आधार है बच्चों को ढेर सारी जानकारी प्रदान करना जिसे बच्चों को मूल्यांकन के समय वैसा ही बताना पड़ता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्थाएँ विवादों से भी बचना चाहती हैं। जबकि हमारे सामने स्थिति ऐसी है जहाँ यह सुनिश्चित करने के लिए कि सामाजिक विज्ञान लोकतंत्र के उद्देश्यों को पूरा करता है, कक्षाओं में विवादास्पद विषयों को लाना ही होगा। और फिर उनका विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ समीक्षात्मक ढंग से विश्लेषण करना होगा ताकि उन्हें सही ढंग से समझा जा सके और उनके बेहतर समाधान ढूँढ़े जा सकें। इसे प्रो. कृष्णकुमार ने अपनी किताब 'लर्निंग फ्रॉम कॉन्फ्लिक्ट' में विस्तार से समझाया है। चुनाव वास्तव में किस तरह होते हैं, निर्धारित प्रक्रियाओं द्वारा नागरिक जरूरी मुद्दों – जैसे बड़े बाँधों के पर्यावरणीय व सामाजिक प्रभाव, वाहनों के यातायात में अनियंत्रित इजाफा, या कि राष्ट्रकुल खेलों के आयोजन जैसी भी कोई बात – के बारे में क्या करते हैं या क्या कर सकते हैं, इस तरह

के ढेर सारे उदाहरण देने पर बच्चों का विभिन्न, और अक्सर विरोधाभासी, दृष्टिकोणों से पाला पड़ता है जिससे उन्हें किसी भी मुद्दे के बारे में और गहराई में जाकर सामूहिक रूप से पड़ताल करने की प्रेरणा मिलती है।

लोकतंत्र के लिए शिक्षा की जरूरत यह भी है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित की जाए तथा निर्णयों व प्रस्तावों से भागीदारों, यानि कि विद्यार्थियों, में सफलता का भाव पैदा हो। विद्यार्थियों में सफलता के ऐसे भाव के न होने पर वे, जो भविष्य के नागरिक हैं, लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्धता की बजाय दोषदर्शी रवैया अख्तियार कर लेंगे, जिससे कि लोकतंत्र के लिए सामाजिक विज्ञान शिक्षा का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाएगा।

लोकतंत्र को विकसित करने के लिए अच्छी सामाजिक विज्ञान शिक्षा जरूरी है। और इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षातंत्र, शिक्षक व पालकों की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और उसके अन्तर्निहित सिद्धान्तों में गहरी आस्था हो। यह विश्वास–कि सिर्फ लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा ही झगड़ों तथा मुश्किल परिस्थितियों को मानवीय व अहिंसक ढंग से सुलझाया जा सकता है – लोकतंत्र की सफलता के लिए बेहद जरूरी है। इसके अलावा, एक सच्ची लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर ही, निरन्तर और ऊँचे स्तरों पर पहुँचते जाने का अन्तर्निहित सामर्थ्य होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम ऐसी सामग्री और तरीके विकसित करे जो लोकतांत्रिक ढंग से कार्य करने के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों और आचरणों को सफलतापूर्वक विकसित कर सकें। पाठ्यक्रम द्वारा बच्चों के बीच सार्वजनिक मुद्दों पर सहयोगात्मक ढंग से, सहकार्यता पर आधारित, समतावादी सामूहिक कार्य कर पाने के लिए जरूरी क्षमताओं का विकास किया जाना चाहिए।

> *लोकतंत्र को विकसित करने के लिए अच्छी सामाजिक विज्ञान शिक्षा जरूरी है। और इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षातंत्र, शिक्षक व पालकों की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और उसके अन्तर्निहित सिद्धान्तों में गहरी आस्था हो।*

हमारे पास न सिर्फ कुछ खास स्कूलों के बल्कि कुछ वृहद् पाठ्यचर्याओं के भी ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जो इस तरह से कार्य करते हैं। एनसीईआरटी का मिडिल व हाईस्कूल स्तर की हालिया पाठ्यक्रम व किताबें ऐसा ही एक उदाहरण हैं। मिडिल स्कूल की इतिहास, तथा सामाजिक व राजनैतिक जीवन विषयों की किताबें तथा हाईस्कूल स्तर की इतिहास, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र की किताबों में कुछ ऐसी केस स्टडीज़ (मामलों के अध्ययन) का प्रयोग किया गया है जो विवादों को उपजाती हैं; उनमें दृष्टिकोणों की भिन्नता है और वे उन सामूहिक कार्यवाहियों का भी जिक्र करती हैं जो कुछ हद तक सफल रही हैं। देशभर में कई स्कूल हैं, जिनमें से कुछ के अनुभव इस अंक में बताए गए हैं, जैसे शिशु वन (मुम्बई), नम्मा शाले (बंगलौर), पूर्णोदय (बंगलौर), विक्रमशिला (कोलकाता), शिक्षा मित्र (कोलकाता), सेन्टर फॉर लर्निंग (हैदराबाद व बंगलौर), आधारशिला (सेंधवा) और कई अन्य, जो खुद अपना पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री तैयार करते हैं, पाठ्यचर्या के अंग के रूप में इस तरह के मुद्दों की कक्षा में चर्चा आयोजित करते हैं और अपने बच्चों को बीटी बैंगन, जलवायु परिवर्तन या आम आदमी पर राष्ट्रकुल खेलों के प्रभाव जैसे मुद्दों को उठाने वाले मंचों पर भाग लेने के लिए भी ले जाते हैं। एकलव्य की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को भी समालोचनात्मक व विचारशील लोकतंत्र के लिए सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम विकसित करने की संसाधन सामग्री के रूप में देखा जा सकता है।

न तो एनसीईआरटी की नई किताबों की पद्धति और न ही ऊपर उल्लिखित स्कूलों या शैक्षणिक समूहों का तरीका किसी भी ढंग से पक्षपाती है। वे उसी हद तक राजनैतिक हैं जहाँ तक कि लोकतंत्र एक राजनैतिक आदर्श है जो कि हमारे राष्ट्र के संविधान का आधार है। इस देश के नागरिक होने के नाते, क्या यह हमारा दायित्व नहीं है कि हम संविधान के सही पालन को, और इस तरह से लोकतंत्र के सही पालन को सुनिश्चित करें? तो फिर लोगों द्वारा उठाए गए ऊपर उल्लिखित कदमों को पक्षपाती क्यों माना जाए जबकि ऐसे कदमों या कार्यों को, जो वाकई में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के प्रति अनैतिक हैं, वैध और मुख्यधारा का माना जाता है?

> *शिक्षक, पालक, सामुदायिक नेता, सभी ऐसी सामाजिक विज्ञान शिक्षा को तरजीह देना चाहेंगे जो सत्ता के प्रति मजबूत समालोचनात्मक रवैया रखने के बजाय उसका अभिवादन करती हो, और विवादों को बच्चों के दिमागों से दूर ही रखती हो।*

समालोचनात्मक नागरिकता के लिए दी जाने वाली सामाजिक विज्ञान शिक्षा की चुनौतियाँ

दृष्टिकोणों के विरोधाभास इस तथ्य में मौजूद होते हैं कि समाज के बदलने के ढंग उतने औपचारिक व सीधे–सादे नहीं होते जितने कि

कागज पर बदल दी जाने वाली नीतियाँ होती हैं। हकीकत यह है कि सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से भारत बहुत हद तक ऊँच–नीच के क्रम पर आधारित, (आर्थिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक ढंग से) सामन्ती और जाति–आधारित देश है। प्रत्येक मनुष्य की कई पहचान होती हैं – परिवार की, धर्म की, अपने सामाजिक समूह की, राष्ट्र की, व्यवसाय की। हालाँकि भारत 60 वर्ष पूर्व एक लोकतंत्र बन गया था, लेकिन वह अभी भी कार्यकारी व सांस्कृतिक रूप से काफी हद तक एक जाति–आधारित, सामन्ती समाज है। संस्थागत प्रक्रियाएँ जो लोकतंत्र को, खासतौर पर शिक्षा प्रणाली को मजबूत बना सकती थीं, वस्तुतः इस सांस्कृतिक बोझ के नीचे झुक गईं। शिक्षक, पालक, सामुदायिक नेता, सभी ऐसी सामाजिक विज्ञान शिक्षा को तरजीह देना चाहेंगे जो सत्ता के प्रति मजबूत समालोचनात्मक रवैया रखने के बजाय उसका अभिवादन करती हो, और विवादों को बच्चों के दिमागों से दूर ही रखती हो। इसलिए वे लोग, जिनका खुद अपने आचरण में लोकतांत्रिक होना जरूरी है, तथा जिनसे यह अपेक्षा होती है कि वे बच्चों के भीतर भी ऐसे मूल्यों व गुणों को पैदा कर उन्हें बढ़ावा देंगे, दरअसल खुद ही लोकतांत्रिक आचरण विकसित व प्रोत्साहित करने के लिए किए जाने वाले प्रयासों को कमजोर करने में सक्रिय रूप से भागीदार होते हैं। इसके विपरीत, यदि कुछ थोड़े शिक्षक समालोचनात्मक और विचारशील सोच को कक्षा के अन्दर अपनाते हैं, तो दूसरे शिक्षक, पालकगण और समुदाय के सदस्य उन्हें प्रोत्हासित करने व सहयोग देने की बजाय उनकी आलोचना करते हैं और उन्हें अलग–थलग कर दिया जाता है। इसलिए, सामाजिक विज्ञान शिक्षक अक्सर किसी जाति–आधारित, ग्रामीण स्कूल की कक्षा में स्कूली निर्णय प्रक्रिया के लिए प्रतिनिधित्व पर आधारित बच्चों की किसी व्यवस्था को लागू करने से डरते हैं क्योंकि अगर वंचित वर्गों से कोई लड़की या लड़का 'चुन' लिया जाए तो विवाद खड़ा हो जाता है।

सम्भ्रान्त स्कूलों की कक्षाएँ, जहाँ प्रगतिशील कार्यपद्धतियों का उपयोग हो रहा होता है, सामाजिक रूप से विविधता वाली मिश्रित कक्षाओं की बजाय एकरूपी सम्भ्रान्त कक्षाएँ बन जाती हैं। ऐसी कक्षाओं की वर्ग/जाति सम्बन्धी एकरूपी प्रति के कारण प्रतिनिधित्व की इसी तरह की गतिविधि कम विवादास्पद रहती है क्योंकि वह यथास्थिति को उसी ढंग से चुनौती नहीं देती जैसी चुनौती उसे ग्रामीण परिवेश में मिलती है।

इससे फिर अलग–अलग प्रकार के स्कूलों के लिए अलग–अलग ढंग की सामाजिक विज्ञान शिक्षा की सम्भावना का जन्म होता है, और यह भेद ही समानता के उस सिद्धान्त के लिए अनैतिक हो जाता है जो कि किसी भी लोकतांत्रिक समाज का आधार होता है।

निष्कर्ष

जो बात मैं कहना चाह रही हूँ वह यही है कि स्कूलों में वृहद् स्तर पर लोकतंत्रात्मक सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या और शिक्षण के व्यापक कार्यान्वयन के द्वारा ही किसी लोकतांत्रिक समाज को बनाए रखा जा सकता है और उसमें गुणात्मक विकास किया जा सकता है। कोई भी दूसरा विषय इस भूमिका को नहीं निभा सकता। समालोचना पर आधारित चिन्तनशील सामाजिक विज्ञान अध्ययन व अध्यापन की प्रमुख प्रासंगिकता यही है। जिस किस्म के सामाजिक विज्ञान को मैंने ऊपर विस्तार से समझाने की कोशिश की है, उसे व्यावहारिक हकीकत बनाने के लिए उसके पालन करने वालों को शैक्षणिक, बौद्धिक और सामाजिक सहयोग के साथ–साथ संसाधनों, मित्र समूहों की आवश्यकता होती है। मुझे पूरा भरोसा है कि इस पत्रिका के पाठक इस दिशा में कदम उठाएँगे।

सामाजिक विज्ञान की ऐसी शिक्षा न केवल समालोचनात्मक व चिन्तनशील लोकतांत्रिक नागरिकों के गुणों का विकास करेगी, बल्कि उनके भीतर किसी भी कार्यक्षेत्र में, समूह में रहकर काम करने की क्षमता, तथा लगातार बदलती दुनिया में विवेचनात्मक रूप से विवेकपूर्ण (और इसलिए मेरे हिसाब से बेहतर) चुनाव करने की क्षमता भी पैदा करेगी।

दूसरे प्रकार के सामाजिक विज्ञान शिक्षण (जानकारियाँ दे देना, अमुक–अमुक चीजों या लोगों के बारे में जानना आदि) की, मेरे हिसाब से, स्कूली शिक्षा के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है और इसलिए बच्चों को उस बोझ से बचाया जा सकता है।

अंजलि नरोन्हा *ने दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स से अर्थशास्त्र में एम.ए. किया है और वे 1982 से एकलव्य में काम कर रही हैं। वे एकलव्य के सामाजिक विज्ञान शिक्षा कार्यक्रम और भाषा व गणित से जुड़े प्राथमिक स्कूल शिक्षा कार्यक्रम के विकास में शामिल रही हैं। वे एनसीईआरटी की कक्षा 6 तथा 7 के सामाजिक और राजनैतिक जीवन विषय के विकास समूह का हिस्सा रही हैं। उन्होंने सामाजिक विज्ञान शिक्षा तथा स्कूली शिक्षा व्यवस्थाओं में नवप्रवर्तनों पर कई शोधपत्र भी लिखे हैं। वर्तमान में वे द्विभाषिक भाषा और अध्ययन कार्यक्रम के विकास में, TISS के एम.ए. शिक्षा कार्यक्रम के पाठ्यक्रमों के विकास तथा अध्यापन में, स्कूली विकास एवं सार्वजनिक शिक्षा कार्यक्रमों में, तथा NCTE के साथ नीति निर्धारण व शिक्षक शिक्षण पाठ्यक्रमों के विकास जैसे कार्यों में व्यस्त हैं। उनसे इस anjali_noronha99@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

05 सामाजिक अध्ययन में परेशान करने वाले सवाल

हृदयकांत दीवान



अ. विषय परिचय

सामाजिक अध्ययन हमारे जीवन और अस्तित्व से गहरे तरीके से जुड़ा है। इससे हमारे व्यवहार को प्रभावित करने और संसार को देखने के हमारे नजरिए को गढ़ने की उम्मीद की जाती है। सामाजिक अध्ययन यह उम्मीद करता है कि सीखने वाला समाज को प्रभावित करने के साथ ही उसका अंग भी बन जाएगा। इस सवाल का, कि हम बच्चों को स्कूल में क्यों पढ़वाएँ, आम उत्तर होता है 'ताकि वे अच्छे नागरिक बनें'। सामाजिक अध्ययन एक ओर जहाँ बच्चे के जीवन में जड़ें जमाए हुए, समाजों और नागरिकों की भिन्न–भिन्न धारणाओं को समझाने और उनका विश्लेषण करने का प्रयास करता है तो वहीं दूसरी ओर यह अपने को परस्पर विरोधी तानोंबानों में उलझा हुआ पाता है।

सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम की नैतिक बुनियादों में कुछ स्वयंसिद्ध मान्यताएँ होती हैं। उदाहरण के लिए, 'सभी मनुष्य समान हैं' को भारत के संविधान के अनुसार एक स्वयंसिद्ध तथ्य माना जा सकता है। हम जिन स्वयंसिद्ध तथ्यों को अपनाते हैं उनका – भोपाल गैस त्रासदी से लेकर हमारे घर में होने वाले लिंग भेदभाव तक – हमारे आसपास के संसार का विश्लेषण करने के तरीके पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

एक सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में क्या और किस तरह पढ़ाया जाना चाहिए, इनका चुनाव इस पर निर्भर करता है कि हम समाज और मनुष्यों को कैसे देखते हैं। संविधान की प्रस्तावना से यह समझा जा सकता है कि इन खास शब्दों से क्या तात्पर्य है, परन्तु इनकी व्याख्या करने के ढंग, इनके प्रति आस्था और गम्भीरता की गहराइयों में बहुत भेद होते हैं। हमारी पहचान की धारणाओं से अभिन्न रूप से जुड़ा होने के कारण, सामाजिक अध्ययन अनेक दृष्टियों से एक युद्धक्षेत्र की तरह होता है क्योंकि यह विचारधाराओं और विशेष मतों को आरोपित करने के रास्ते उपलब्ध कराता है। परन्तु, शिक्षा के उद्देश्य को देखते हुए चिन्ताएँ केवल ये ही नहीं हैं। उसमें स्थिर सामाजिक सिद्धान्तों और रूपान्तरण की चिंताएँ भी शामिल हैं।

सामाजिक अध्ययन अपने आप को ऐसे मुद्दों में उलझाता है जिनसे हर व्यक्ति रोज जद्दोजहद करता है; इसी में इसकी सम्पन्नता और जटिलता निहित है।

जब हम सामाजिक अध्ययन पढ़ाने और पढ़ने पर विचार करते हैं तो हमें इन मुख्य प्रश्नों का सामना करना पड़ता है:

- **उद्देश्य** : सामाजिक अध्ययन के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?
- **घटक** : सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम की बुनियादी निर्माण इकाइयाँ क्या हैं?
- **दृष्टिकोण** : प्रस्तावित विमर्श का दृष्टिकोण क्या है?
- **प्रकृति** : इस विषय की प्रकृति क्या है, और यह किस तरह विकसित होता है और ज्ञान का संग्रह करता है?
- **विधि** : शिक्षण की कौन–सी विधियाँ उपयुक्त होंगी?

नीचे के खण्डों में हम देखेंगे कि सीधे–साफ ढंग से इन प्रश्नों के उत्तर देना क्यों कठिन है। हम अपना ध्यान प्राथमिक कक्षाओं पर केन्द्रित रखेंगे।

ब. उद्देश्य

सामाजिक अध्ययन का सर्वप्रमुख उद्देश्य समाज को और उसमें अपने स्थान को समझने में बच्चे की मदद करना, और विवेकपूर्ण व्यक्तिगत और सामाजिक विकल्पों को चुनने में इस समझ का उपयोग करना, और उसे यह महसूस करने के काबिल बनाना कि उसके चुनाव उस समाज के निर्माण को प्रभावित करते हैं जिसमें वह रहता है।

ऐसे चुनावों का केवल व्यक्तिगत हितों से ही नहीं बल्कि पूरे समाज की सामूहिक भलाई से भी प्रेरित होना जरूरी है। चूँकि एक 'अच्छा समाज' और एक 'अच्छा मनुष्य' नैतिक अवधारणाएँ हैं, इसलिए सामाजिक अध्ययन का चौथा लक्ष्य नैतिक बोध का विकास है।

एक सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम के कुछ निहितार्थ होना चाहिए कि बच्चा अपने समाज के बारे में क्या समझता है और किस तरह वह उससे पेश आता है। कार्यक्रम को धीरे–धीरे बच्चे को बेहतर फैसले लेने, चुनाव तथा निर्णय करने में अधिक आत्मविश्वास महसूस करने में मदद करना चाहिए। उसे किसी मामले में पक्ष लेने, जो एक उदारवादी, लोकतांत्रिक बहुलतावादी समाज में महत्वपूर्ण है, के योग्य बनाना भी जरूरी है। पर इस सबके बावजूद किसी भी सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में बच्चों में दूसरों के चुनावों और दृष्टिकोणों, तथा आस्थाओं और अनुभवों की अनेकता से सामन्जस्य बिठाना भी बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह व्यक्ति के वैश्विक दृष्टिकोण को अधिक समृद्ध बनाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नैतिक विकास का कुछ हिस्सा सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में ही समाहित है। यहाँ सुझाए गए नैतिक विकास का सम्बन्ध स्वयं का तार्किक और मूल्यपरक ढाँचा

निर्मित करने में बच्चे की मदद करने से है। उसे ऐसे उपयुक्त विकल्प चुनने में सक्षम बनना जरूरी है जो अधिकाँश समाज के लिए लाभकारी हों। इसके अलावा, उसे पूरे समाज की आवश्यकताओं और पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाना भी जरूरी है।

अक्सर सामाजिक अध्ययन को किसी विशेष प्रकार के सामुदायिक जीवन और नैतिक विज्ञान के बारे में सीखना मान लिया जाता है, और यह अक्सर करने और न करने वाली बातों की एक सूची तक सीमित हो जाता है जिनका बच्चों को पालन करना होता है। ऐसा कार्यक्रम बच्चे के निरीक्षण करने, अनुभव करने, विचारों को गढ़ने, और काम करने तथा निर्णय के अपने खुद के तरीके विकसित करने की छूट और अवसरों को सीमित कर देता है।

स. घटक

उपरोक्त तीन उद्देश्यों से सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम के मोटे तौर पर चार घटक दिखाई देते हैंः चुनाव, अवधारणा, जानकारी और कौशल।

1. चुनाव

एक अच्छा सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम बच्चे को नैतिक रूप से करने और न करने के निर्देशों की सूची देने के बजाय पक्ष और विपक्ष के तथ्यों को तौलकर खुद उचित चुनाव करने की उसकी क्षमता विकसित करने का प्रयास करेगा। इसमें यह महत्वपूर्ण है कि वह हमारे संविधान में स्थापित मूल्यों – तार्किक सोच, जाँच–पड़ताल, समता, विविधता और अनेकता के सिद्धान्तों – का अनुसरण करे।

2. अवधारणा

प्रश्न पूछने और समझने, उत्तरों को खोजने और चुनाव करने की योग्यता होने के लिए आधारभूत अवधारणाओं को समझना आवश्यक है। यदि हम उन्हें समुचित स्पष्टता के साथ नहीं समझते तो समझदारी भरे निर्णय नहीं कर सकते। सामाजिक अध्ययन में अवधारणाएँ ही समझ–निर्माण करने की बुनियादी इकाइयाँ होती हैं। अवधारणा से तात्पर्य वास्तविक संसार की किसी वस्तु या घटना की सैद्धान्तिक समझ से है। राष्ट्र, त्यौहार, बाजार, नागरिक, समुदाय, मनुष्य, घर, परिवार, आदि – प्रत्येक एक अवधारणा है।

सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में लोगों की पारस्परिक निर्भरता, सम्प्रेषण, मानव समाज, समाजों का विकास, स्थिति निर्धारण और मानचित्रण, जलवायु, पर्यावास, बाज़ार, शासन व्यवस्था, सहयोग, विविधता, अनेकता, आदि के विचारों के साथ काम करने को शामिल करना भी आवश्यक है। ये अवधारणाएँ धीरे–धीरे और अधिक जटिल होती जाएँगी और उनमें नए–नए अन्तर्सम्बन्ध बनते जाएँगे। बच्चे की शुरुआती स्पष्ट अवधारणाएँ – एक कुर्सी; ईद, दिवाली, क्रिसमस जैसे त्यौहार; घर, परिवार – धीरे–धीरे विकसित होती हुई अधिक गहरी और विस्तृत होती जाती हैं। सभी बच्चों में एक–सा अवधारणात्मक विकास नहीं होता। बच्चों में अवधारणाएँ बारीक भेदों के साथ विकसित होती हैं, और उनके अपने अलग–अलग अनुभवों के ढाँचों पर ही टिकी रह सकती हैं।

इसका एक अन्य उदाहरण यह हो सकता है कि जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है तो वह 'पुरुष' समूह में से 'पिता' का विचार स्पष्ट रूप से अलग महसूस करने लगता है। फिर एक स्थिति आती है जब एक पिता और दूसरे पुरुष में भेद दिखाई देने लगता है। इस तरह, अनुभवों में अन्तर ही अवधारणाओं के निर्माण में बारीक भेद पैदा कर देता है।

3. जानकारी

अवधारणाएँ वास्तविक संसार से ली गई जातीय संरचनाएँ और अमूर्त धारणाएँ होती हैं। इसका मतलब हुआ कि वास्तविक संसार की जानकारी अवधारणाओं के निर्माण का आधार होती है।

जैसे नक्शे की अवधारणा को लें। नक्शा बनाने के लिए यह जानना जरूरी है कि उत्तर कहाँ है और दक्षिण कहाँ है। इसी प्रकार, सम्बन्धों की विविधता और उनके नाम जाने बिना, आप हमारे वार्तालापों और सामाजिक प्रक्रियाओं में आने वाले लिंग–आधारित तथा अन्य कौटुम्बिक सम्बन्धों का विश्लेषण नहीं कर सकते। किसी बाजार या नगर का इतिहास समझने के लिए हमें सम्बन्धित तारीखों और घटनाओं की जानकारी की जरूरत होती है।

> *सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में लोगों की पारस्परिक निर्भरता, सम्प्रेषण, मानव समाज, समाजों का विकास, स्थिति निर्धारण और मानचित्रण, जलवायु, पर्यावास, बाज़ार, शासन व्यवस्था, सहयोग, विविधता, अनेकता, आदि के विचारों के साथ काम करने को शामिल करना भी आवश्यक है।*

अन्य विषयों जैसे गणित या विज्ञान की अपेक्षा सामाजिक अध्ययन को जानकारी की ज्यादा जरूरत होती है। गणित में एक बारगी जब आपके पास कुछ स्वयंसिद्ध तथ्य हो जाते हैं तो आप उनका उपयोग करते हुए तार्किक रूप से सारा ज्ञान विकसित कर सकते

हैं। विज्ञान में हम एक प्रयोग को दोहरा सकते हैं या नए प्रयोग भी कर सकते हैं। इसमें यह भी सुनिश्चित रहता है कि किन्हीं दी गई स्थितियों में प्रेक्षणों के परिणाम सुसंगत होंगे।

परन्तु सामाजिक अध्ययन में विश्लेषण को गढ़ने के लिए किसी जानकारी और तथ्यों के बगैर किसी अवधारणा के साथ अमूर्त ढंग से काम करना सम्भव नहीं है। इसका काम जानकारी में से संरचनाएँ निकालना है। इसलिए, इस विषय को पढ़ाने में यह महत्वपूर्ण बात है कि क्या जानकारी प्रदान की जाती है और वह गहराई के किस स्तर तक जाती है। पर निश्चित ही हमें, इस बारे में सचेत रहना चाहिए कि जानकारी शायद ही कभी निष्पक्ष होती है, वह आमतौर पर लोगों के दृष्टिकोणों से रंगी हुई होती है।

जानकारी को कभी–कभी भ्रमवश अवधारणा समझ लिया जाता है। यह भ्रम इसलिए पैदा होता है कि जानकारी और अवधारणा आपस में, उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा एक दूसरे की बात करने में समान भाषा के उपयोग, दोनों तरह से गुंथी रहती हैं। कुछ पहलुओं में, जानकारी अवधारणा के विकास से पहले होती है। पर, एक बारगी अवधारणा के विकसित हो जाने के बाद, उसका उपयोग और अधिक जानकारी को व्यवस्थित करने और बनाए रखने के लिए किया जा सकता है। किसी बच्चे के लिए 'शिक्षक' का आशय उसके खास शिक्षक से हो सकता है – यह जानकारी है। दूसरी ओर, बच्चे की माँ 'शिक्षक' शब्द का उपयोग उस विशेष शिक्षक (जानकारी) या शिक्षक की अवधारणा, दोनों को निरूपित करने के लिए कर सकती है।

4. कौशल

जानकारी से आगे चलकर अवधारणा, अवधारणा से समझ और समझ से विकल्पों का चुनाव कैसे निकलता है? इसी में कौशलों की भूमिका है। जैसे तर्क प्रक्रिया एक गणितीय कौशल है, और परिकल्पना करना और प्रयोग करना वैज्ञानिक कौशल हैं, उसी तरह सामाजिक अध्ययन के अपने विशेष कौशल होते हैं।

सामाजिक अध्ययन कौशलों के कुछ उदाहरण हैं: यह पहचानना कि किस बात का प्रेक्षण करना है, प्रेक्षण करना, प्रेक्षण का विश्लेषण करना, संरचनाएँ निर्मित करना, स्थितियों पर विचार करना आदि। हो सकता है कि ये कठिन और उच्च स्तर के कौशल प्रतीत हों, परन्तु छोटे बच्चे भी इन्हें प्रदर्शित करते हैं, उदाहरण के लिए तब, जब उनसे उनकी कक्षा या स्कूल का नक्शा बनाने को या कोई सर्वेक्षण करने को कहा जाता है। कौशल तथा अवधारणाएँ प्रायः साथ–साथ और सन्दर्भों के अनुसार विकसित होती हैं।

ऊपर सुझाए गए घटकों की जाँच करने के लिए अब हम एक उदाहरण लेते हैं।

मानव सभ्यता कैसे विकसित हुई?

मान लीजिए कि शिकार संग्रहण युग से वर्तमान समय तक मानव समाज का विकास समझना एक दिया गया कार्य है। इसके लिए यह जानकारी आवश्यक है कि मनुष्य पहले खेती करना नहीं जानते थे, वे समूहों में जानवरों का शिकार करते थे और फिर धीरे–धीरे वे औजारों का इस्तेमाल करने लगे। हमें यह भी जानना जरूरी है कि औजारों में धातु का इस्तेमाल, प्रमुख रूप से पत्थर के बेहतर विकल्प की तरह, बाद में आया। इसके लिए गुफाचित्रों में मौजूद जानकारी को इकट्ठा किया जा सकता है। अवधारणात्मक ढाँचे के लिए हमें ढेर सारी जानकारी की जरूरत होती है जिसे केवल प्रेक्षण और अनुभव से इकट्ठा नहीं किया जा सकता।

कौशल और क्षमताएँ ऐसे स्रोतों का पता लगाने, समझने और उपयोग करने के इर्द–गिर्द घूमती हैं जिनमें इन तत्वों के बारे में जानकारी होती है। इसमें साधारण पढ़ने की ऐसी सामग्री, जिसमें प्रेक्षण से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण किया गया हो, या फिर मूल विवरणों की व्याख्या भी शामिल हो सकती है। इसलिए जहाँ सीधा प्रेक्षण आवश्यक न भी हो तब भी कौशलों के अन्य पक्ष जरूरी होते हैं। इनके लिए अनेक कौशल और योग्यताएँ आवश्यक होती हैं, लेकिन वे उन स्थूल रूप से प्रेक्षणीय सम्भावनाओं से भिन्न होती हैं जिनकी जरूरत विज्ञान से सम्बन्धित कार्यों के लिए होती है।

मानव समाज के विकास के इस विश्लेषण में शामिल अवधारणाएँ हैं: यांत्रिकी का बढ़ता हुआ उपयोग, उत्पादन की प्रकृति, शासन व्यवस्था, संसाधनों और अधिशेष का बँटवारा, व्यापार और वाणिज्य की प्रकृति आदि।

नैतिकशास्त्र के सिद्धान्तों में विकास को लम्बे समय तक चल सकने की दृष्टि से समझना, वितरण में असमानता से निपटना, ऐसी शासन व्यवस्था के सिद्धान्त जो न्यायपूर्ण और समतावादी हो, यांत्रिकी और विस्तृत व्यापार को उपयोग करने के फायदे और नुकसान आदि शामिल रहते हैं।

जब हम ज्ञान के अधिक व्यापक और अमूर्त रूप की ओर बढ़ते हैं तो इनमें से कुछ श्रेणियों में हम परस्पर व्याप्त क्षेत्रों और घटकों का अनुक्रम पाते हैं। जैसे–जैसे हम उच्च प्राथमिक कक्षाओं की ओर बढ़ते हैं – मूर्त चित्रों और वर्णनों से सीखने से दूर होना – तो अमूर्तीकरण और बच्चे के अनुभवों से दूरी बढ़ती जाती है। बच्चे से जो व्यापकीकरण करने और सम्बन्ध जोड़ने की अपेक्षा की जाती है वे भी अधिक जटिल हो जाते हैं।

ऐसे में तस्वीर की मूर्तता को बचाए रखने की आवश्यकता बनी रहती है।

द. दृष्टिकोण

जिन दृष्टिकोणों से कोई कक्षा में सामाजिक मुद्दों को उठाता है उसमें छिपा सवाल अत्यन्त परेशान करने वाला है। क्या समता और न्याय का आदर करना सीखने से उन स्थितियों में कुछ करने की अपेक्षा की जाती है जहाँ अन्याय और असमानता हो – चाहे इसका अर्थ बच्चे के घर या समुदाय में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित बातों का सामना करने से हो? यदि बच्चे अन्याय और असमानता की स्थितियों का अन्वेषण करते हैं तो क्या वे इन्हें बदलने के तरीकों और साधनों की भी चर्चा करते हैं? या, क्या उन्हें अपने को सिर्फ संविधान, उसके वायदों और संरचना तक ही सीमित रखना चाहिए, बिना इसका विश्लेषण किए कि वे यथार्थ में कैसे काम करते हैं? यह एक कठिन निर्णय है।

> *क्या समता और न्याय का आदर करना सीखने से उन स्थितियों में कुछ करने की अपेक्षा की जाती है जहाँ अन्याय और असमानता हो – चाहे इसका अर्थ बच्चे के घर या समुदाय में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित बातों का सामना करने से हो?*

वास्तविक स्थितियों से उठने वालों सवालों पर कक्षा में चर्चा करना आसान नहीं होता। विभिन्न पृष्ठभूमियों और सामाजिक–आर्थिक स्तरों से आए बच्चे ऐसे मुद्दों पर मात्र सैद्धान्तिक या अकादमिक ढंग से बहस नहीं कर सकते। असमानता, सामाजिक प्रभुत्व और लोकतंत्र के हनन के साथ लोगों और परिवारों के नाम जुड़े रहते हैं। इन सबके साथ व्यक्तिगत सम्बन्धों और उलझावों का बोझ भी होता है। स्कूली व्यवस्था की स्वाभाविक प्रवृत्ति टकराव और अप्रियता को टालने, असमानताओं को छिपाने तथा शान्ति और सद्भाव की वकालत करने की होगी। अच्छा नागरिक वह है जो अपनी स्थिति को शान्त भाव से स्वीकार कर लेता है और आशा करता है कि बेहतर कानून बनेंगे और अधिक प्रभावकारी ढंग से उन्हें लागू किया जाएगा। तर्क दिया जा सकता है कि यही किसी समाज के लिए सबसे अच्छा विकल्प है, लेकिन वास्तव में यह सिर्फ एक दृष्टिकोण है। इसके विपरीत दृष्टिकोण भी हैं।

भारत का संविधान एक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज का वायदा करता है। परन्तु वह इसके विस्तार में नहीं जाता कि किस तरह के नागरिक और शासन व्यवस्था इसे साकार कर सकते हैं। इसलिए यह समझ विकसित करने में बच्चे की सहायता करना प्रारम्भिक स्कूली कार्यक्रम का लक्ष्य होना चाहिए। इसलिए सवाल यह है कि क्या हम बच्चों को वर्तमान परिस्थिति में सबसे अच्छे ढंग से सफल होने के लिए तैयार करते हैं? या क्या हम उन्हें सामाजिक प्रवाह की दिशा पर प्रश्न उठाने और जिन लक्ष्यों का वायदा किया गया था उनके लिए संघर्ष करने के लिए तैयार करते हैं?

इसलिए ऐसा कार्यक्रम जो बच्चों में न्याय और बराबरी की भावना निर्मित करने पर ध्यान केन्द्रित करता हो, और ऐसा कार्यक्रम जो समाजरूपी प्राचीन तालाब की निश्चलता को भंग न करते हुए शान्ति और सद्भाव पर ध्यान केन्द्रित करता हो, एक–दूसरे के विरोधाभासी होंगे और उनमें संघर्ष होगा।

बच्चा अपने परिवेश के साथ अनेक अनुभवों और क्रियाकलापों को लेकर स्कूल आता है। उसके पास अपना आदर किए जाने और अपना मूल्य समझे जाने की, तथा एक समूह का हिस्सा माने जाने की यादें होती हैं। पर साथ ही अलग रखे जाने की, दूसरों को दबाने की, या दूसरों के द्वारा दबाए जाने आदि की भी यादें होती हैं। इन अनुभवों ने उसका व्यवहार और मान्यताएँ गढ़ी होती हैं। इनके आधार पर और अपने मौन विश्लेषण के द्वारा उसने अपनी पहचान बनाई होती है। ऐसा कार्यक्रम विकसित करना जो सार्थक ढंग से इन अनुभवों और इस पहचान का उपयोग कर सके और उनके माध्यम से एक साझा दृष्टिकोण विकसित कर सके, आसान नहीं है। फिर, यह भी बहस का मुद्दा हो सकता है कि एक साझा दृष्टिकोण या व्यापक मान्यता ढाँचा वांछनीय भी है या नहीं। हमें यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अनेक परस्पर टकराने वाले वैश्विक दृष्टिकोण होते हैं, और यह साफ नहीं होता कि किस वैश्विक दृष्टिकोण की वकालत की जाना चाहिए। हम इस बात की उपेक्षा नहीं कर सकते कि राज्य अनेक प्रभुत्ववादी ताकतों द्वारा नियंत्रित होता है जो स्वयं भी बच्चे के दृष्टिकोण को ढालना चाहेंगे। इसलिए विषयवस्तु को और उसको पढ़ाए जाने के ढंग को निर्धारित करने का संघर्ष यहाँ काफी तीव्र होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सामाजिक पहचान विकसित करने और पर्यावरण, सांस्कृतिक और इतिहास की व्याख्या करने के अनेक दृष्टिकोण हो सकते हैं। चुने गए दृष्टिकोण का निर्धारण मनुष्य के उसके समाज से माने गए सम्बन्ध, मनुष्यों के बीच के सम्बन्ध, और बच्चे कैसे सीखते हैं इसकी समझ के आधार पर होता है। करने और न करने वाली हिदायतों की कोई भी सूची जो चुनाव, विवेक और तार्किक विश्लेषण का अवसर नहीं देती, स्वीकार नहीं की जा सकती। इसलिए प्राथमिक स्कूलों में सामाजिक अध्ययन के बारे में विचार करते समय ध्यान में रखने वाली बातों में से एक है, उपदेशात्मक कार्यक्रम विकसित करने के जाल में उलझने से बचना।

इ. विषय की प्रकृति

क्या यह सामाजिक अध्ययन है या सामाजिक विज्ञान?

आम प्रचलित धारणा रही है कि वैज्ञानिक पद्धति ज्ञान और जीवन का बेहतर मार्ग सुलभ कराती है; यह भी कि गणितीय तर्क प्रणाली के साथ मिलकर यह मानवीय जीवन को तर्कसंगत बनाने के लिए एक समग्र समाधान बन जाती है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक अध्ययन क्षेत्रों का भी, वैज्ञानिक प्रत्यय जोड़कर, फिर से नामकरण कर दिया गया।

वैश्विक रूप से विज्ञान और यांत्रिकी की शक्ति, तथा प्रमाण–आधारित तर्कों और वैचारिक तर्क पद्धति के अचूक होने के विश्वास को ही समस्त ज्ञान के निर्माण का आधार माना गया। यह धारणा अध्ययन के सभी क्षेत्रों में घर कर गई, और इसके फलस्वरूप वैज्ञानिक दृष्टिकोण मूल्यवान हो गया। सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न विषयों के अध्येताओं ने परिश्रमपूर्वक यह बताया कि किस तरह उनका विषय विज्ञान के निकट था और संज्ञानात्मक दृष्टि से उतना ही तर्कसंगत था।

परन्तु, जहाँ तर्कों और वैचारिक संरचनाओं के तर्कसंगत होने की आवश्यकता में कुछ भी गलत नहीं है, वहीं इस बात को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि मानव व्यवहार के कई पहलू सीधे–साफ विवेकपूर्ण विश्लेषण और तर्कशास्त्र के अनुरूप नहीं होते क्योंकि उनमें कई असंगतियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए आस्था प्रणालियाँ कैसे निर्मित होती हैं, यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसकी जाँच–पड़ताल ऐसे तरीके से करना पड़ती है जिसे वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।

> *फिर, यह भी बहस का मुद्दा हो सकता है कि एक साझा दृष्टिकोण या व्यापक मान्यता ढाँचा वांछनीय भी है या नहीं। हमें यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अनेक परस्पर टकराने वाले वैश्विक दृष्टिकोण होते हैं, और यह साफ नहीं होता कि किस वैश्विक दृष्टिकोण की वकालत की जाना चाहिए।*

प्राकृतिक विज्ञान की एक पद्धति होती है, उसका अपना तरीका होता है जिससे वह ज्ञान का वैध होना और विज्ञान के दायरे में होना स्वीकारता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया के विभिन्न प्रकार के चरण हो सकते हैं लेकिन उनके आधारभूत सिद्धान्त समान होते हैं। और, ज्ञान को अन्तिम रूप से तब स्वीकार किया जाता है जब वह ऐसी भविष्यवाणियाँ करता है जिनकी पुष्टि की जा सके। लेकिन मानव व्यवहार की निपट परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखते हुए, समाज के विविध पहलुओं, और उसके परिवर्तनों का पुनरावलोकन करने के लिए, प्रक्रियाओं की ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता होती है जिसे सहज रूप से सामाजिक विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। विज्ञान के प्रतिकूल, मनुष्य या समाज तर्कसंगत, वस्तुनिष्ठ और प्रायोगिक रूप से एक समान नहीं होते। हमारे लिए स्वयं इस बात पर विचार करना अच्छा होगा कि क्या सामाजिक अध्ययन के विषयों में ज्ञान का मूल्यांकन करने के मानदण्ड, या यह स्वीकार करने के मानदण्ड कि कोई समझने योग्य विचार प्रतिपादित किया गया है, वे ही हो सकते हैं जो विज्ञान के विषयों में होते हैं।

> *विज्ञान के प्रतिकूल, मनुष्य या समाज तर्कसंगत, वस्तुनिष्ठ और प्रायोगिक रूप से एक समान नहीं होते। हमारे लिए स्वयं इस बात पर विचार करना अच्छा होगा कि क्या सामाजिक अध्ययन के विषयों में ज्ञान का मूल्यांकन करने के मानदण्ड, या यह स्वीकार करने के मानदण्ड कि कोई समझने योग्य विचार प्रतिपादित किया गया है, वे ही हो सकते हैं जो विज्ञान के विषयों में होते हैं।*

फ. कक्षा की प्रक्रियाएँ

खाप पंचायतों के प्रभुत्व वाले समाज में, विवाह करने की वैधानिक उम्र और विवाह करने की स्वतंत्रता पर स्कूल में चर्चा करना कठिन है। इसी प्रकार, बाजार की ताकतों के द्वारा संचालित अर्थव्यवस्था में हम किस प्रकार सार्थक ढंग से समता, नियंत्रण और संतोष की बात कर सकते हैं? इन चर्चाओं की विषयवस्तु के तनावों और निहितार्थों के कारण उनका स्कूल में किया जाना कठिन हो जाता है। इसके अलावा स्कूल के संस्थागत ढाँचे की विचारधारा का भी सवाल है, और इसका भी कि किस सीमा तक वह मुक्त चर्चा और वैचारिक जाँच–पड़ताल करने की अनुमति दे सकता है, खासतौर पर ऐसे विषयों पर जिनका बच्चों और उनके आसपास के वयस्कों के जीवन से सम्बन्ध हो।

हालाँकि कक्षा की प्रक्रियाओं की परिपूर्ण व्याख्या इस लेख के दायरे के बाहर होगी, पर हम निम्नलिखित पाँच प्रश्नों पर विचार करेंगे:

1. क्या प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान को

एक ही दृष्टिकोण से समझा जा सकता है, विशेष रूप से यह देखते हुए कि दोनों संयुक्त रूप से 'पर्यावरण अध्ययन' के अन्तर्गत पढ़ाए जाते हैं?

2 क्या शिक्षण कार्यक्रम को मोटे तौर पर विद्यार्थियों के ज्ञान के आधार पर निर्मित किया जा सकता है?

3. आप विद्यार्थी के अनुभव पर विषय को, खासतौर से इतिहास में, कैसे निर्मित कर सकते हैं?

4. जहाँ बात बच्चे के लिए तात्कालिक टकराव वाले मुद्दे की हो तो शिक्षक सीमारेखा कहाँ खींचेंगे?

5. क्या पाठ्यक्रम के बारे में एक समेकित बहुविषयी दृष्टिकोण हो सकता है, या पृथक विषयों पर आधारित कार्यक्रम की आवश्यकता है?

क्या प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान को एक ही दृष्टिकोण से समझा जा सकता है, विशेष रूप से यह देखते हुए कि दोनों संयुक्त रूप से 'पर्यावरण अध्ययन' के अन्तर्गत पढ़ाए जाते हैं?

एक स्तर पर, एक ऐसा दृष्टिकोण सम्भव है जिसमें परिकल्पनाएँ करना, सामाजिक पहलुओं का प्रेक्षण करना और उनमें नियमित संरचनाएँ खोजना शामिल हो, जैसा कि विज्ञान में किया जाता है। परन्तु इस 'वैज्ञानिक' पद्धति को आगे बढ़ाते हुए यह समझने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता कि समाज कैसे विकसित और परिवर्तित होते हैं, कैसे मानव सभ्यताओं ने शिल्प कलाओं का इस्तेमाल करना सीखा, और इसका उनके लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार, शासन की प्रणालियों और उनका किसी समाज के व्यक्तियों के लिए क्या मतलब होता है, इसकी विवेचना करना भी सम्भव नहीं है। सामाजिक गतिशीलता और परिस्थितियों की जटिलता के चलते, कारण तथा परिणाम के स्पष्ट सम्बन्धों को देख पाना मुश्किल होता है। इसके बजाय चीजें जैसी हैं उसका विवरण ही हम देख पाते हैं और उनमें अन्तर करने वाले सूक्ष्म भेदों को पकड़ पाते हैं।

> *सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में निहित कठिनाइयों के साथ इस धारणा, कि वैज्ञानिक ज्ञान सर्वोपरि है, के गठजोड़ ने स्कूल में सामाजिक विषयों के व्यापक तौर पर शामिल किए जाने को हतोत्साहित किया है।*

जाहिर है कि प्राथमिक स्तर पर भी विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के दृष्टिकोण भिन्न होंगे। सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में निहित कठिनाइयों के साथ इस धारणा, कि वैज्ञानिक ज्ञान सर्वोपरि है, के गठजोड़ ने स्कूल में सामाजिक विषयों के व्यापक तौर पर शामिल किए जाने को हतोत्साहित किया है। यही कारण है कि ईवीएस में भी ध्यान बच्चों के जीवन–अनुभवों पर केन्द्रित न होकर सर्वेक्षण करने और नक्शे पर स्थानों को चिन्हित करने पर होता है।

क्या शिक्षण कार्यक्रम को मोटे तौर पर विद्यार्थियों के ज्ञान के आधार पर निर्मित किया जा सकता है?

कार्यक्रम के आरम्भ होते समय बच्चों के पास स्थानीय और व्यक्तिगत जानकारी होती है। यह जानते हुए हम उसका उपयोग ऐसी अधिक व्यापक अवधारणात्मक संरचनाएँ निर्मित करने के लिए करते हैं जो विद्यार्थी के अनुभव पर आधारित होती हैं और उससे जुड़ती हैं।

> *यदि कार्यक्रम बच्चे को कारण खोजने, अपने विचारों को व्यवस्थित करने और विकल्प चुनने का अवसर देता है तो बच्चे के व्यवहार के लिए उसके उपयोगी अर्थ होंगे। ऐसा कार्यक्रम बच्चे को इसकी प्रतीति कराएगा कि समाज क्या है और उससे कैसे जुड़ना चाहिए।*

बच्चे को उपलब्ध जानकारी विभिन्न रूपों में होती है। उसमें परिवार और सम्बन्धी, उसके गाँव का नाम और पास–पड़ोस के गाँव का नाम, पास में बहने वाली नदी, आसपास के पेड़ों, उगाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की फसलों के नाम, बाजार कहाँ है, और वहाँ क्या बिकता है, आदि बातें शामिल रहती हैं।

जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है उसे उपलब्ध जानकारी की मात्रा और उसका दायरा बढ़ते जाते हैं। जहाँ कुछ हद तक यह अपने आप होता है, वहीं सामाजिक अध्ययन के एक औपचारिक प्रयास को ऐसी जानकारी और ज्ञान को बच्चे को सुलभ कराना चाहिए जिस तक अन्यथा उसकी पहुँच नहीं होती। इसके लिए जरूरी होगा कि वह बारीकी से अवलोकन करे, जानकारी और आँकड़े इकट्ठा करे, प्रेक्षणों से व्यापक अवधारणाएँ बनाए और निष्कर्ष आदि निकाले। बच्चे को धीरे–धीरे बढ़ती हुई कठिनाई वाले कार्य करने के अवसर दिया जाना बहुत जरूरी है।

यदि कार्यक्रम बच्चे को कारण खोजने, अपने विचारों को व्यवस्थित करने और विकल्प चुनने का अवसर देता है तो बच्चे के व्यवहार के लिए उसके उपयोगी अर्थ होंगे। ऐसा कार्यक्रम बच्चे को इसकी प्रतीति कराएगा कि समाज क्या है और उससे कैसे जुड़ना चाहिए। वह आसपास की दुनिया में घट रही घटनाओं को समझने के तरीके भी सुझाएगा। बच्चे को कुछ विशेष सिद्धान्तों और सामाजिक आदर्शों का ज्ञान होना और उन पर सवाल उठाने में उसका सक्षम होना भी जरूरी है।

आप विद्यार्थी के अनुभव पर विषय को, खासतौर से इतिहास में, कैसे निर्मित कर सकते हैं?

अवधारणाओं के लिए विषयसूत्र और प्रारम्भिक बिन्दु चुनने के लिए अनेक लोक दृष्टियाँ हैं। इनमें सर्वोपरि तर्क है ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना, और इसका मतलब है जो बच्चे के आसपास है उससे दूर की चीजों की तरफ जाना। परन्तु बच्चे इतनी विविध प्रकार की पृष्ठभूमियों से आते हैं कि उनके कारण इसे सार्थक ढंग से करना कठिन हो जाता है। बच्चे के अनुभव का उपयोग यही हो सकता है कि जो वह जानता है उसे प्रकट करने में और उसका विश्लेषण करने में उसकी सहायता की जाए।

फिर भी, अनुभव के कुछ तत्व ऐसे होते हैं जिन्हें निश्चित रूप से कक्षा में उपयोग किया जा सकता है। जैसे अलग–अलग तरह के कारीगर क्या करते हैं, कौन से औजार और सामग्री इस्तेमाल करते हैं, गाँव में कौन–सी चीजें बाहर से आती हैं, गाँव से कौन–सी चीजें बाहर जाती हैं, लोग जलाऊ लकड़ी कहाँ से लाते हैं, उन्हें पानी कहाँ से मिलता है, त्यौहारों के दौरान लोग क्या करते हैं, आदि, ऐसे तमाम विषयों पर बातचीत इसमें शामिल हो सकती है। ये सब प्रेक्षणों के सहज विवरण होते हैं, परन्तु उनमें इनका आलोचनात्मक विश्लेषण जोड़ देने से ये बातें कठिन बन सकती हैं। इसका विश्लेषण करना आसान नहीं है कि क्यों कुछ लोगों के घर में ही जलस्रोत होता है जबकि दूसरों को पानी लाने बहुत दूर जाना पड़ता है, या कि क्यों कुछ लोगों को पास के जलस्रोतों से पानी लेने की अनुमति भी नहीं होती।

एक मुद्दा यह भी है कि पहले क्या हुआ इसके बारे में सोचने की बच्चे की शुरुआत आप कैसे करते हैं। पहले यह तय करना जरूरी है कि हम राजाओं, राजवंशों, उनके युद्धों के बारे में बात करना चाहते हैं, या कुछ और। यदि इस पर सहमति हो कि हमारे लिए कम से कम ऐसा ऐतिहासिक दृष्टिकोण होना जरूरी है जो समाज के वर्णन और लोगों के जीवन को महत्व देता हो तो हमें बच्चों से इस पर बातचीत करना शुरू करना चाहिए। निश्चित ही, हम बच्चों के वंशवृक्ष से, और उनके माता–पिता तथा बुजुर्ग पुराने समयों के बारे में क्या सोचते हैं, इससे प्रारम्भ कर सकते हैं। परन्तु, इससे कारणों और निहितार्थों की साफ–साफ पहचान नहीं बनती। इसके अलावा इससे ऐसे प्रश्न भी सामने नहीं आते जिनकी विवेचना की जा सके।

इसलिए प्रत्यक्ष अनुभवों का उपयोग करते हुए ऐतिहासिक समझ निर्मित करना कठिन हो जाता है। विश्लेषण के ढाँचे के लिए व्यापक जानकारी का आधार आवश्यक होता है जो बच्चे को तत्काल सुलभ नहीं होता। आँशिक रूप से इस कमी की पूर्ति सुनाई गई कहानियों के माध्यम से की जा सकती है – उदाहरण के लिए, उपलब्ध व्यक्तियों के द्वारा सुनाए गए सामान्य लोगों के जीवन के विवरण।

अब तक यह स्पष्ट हो गया होगा कि कक्षा की पढ़ाई, बच्चा जो पहले से जानता है सिर्फ उसके इर्द–गिर्द नहीं घूम सकती। उसके ज्ञान के दायरे का विस्तार करने के लिए नई जानकारी जोड़े जाने की जरूरत होती है। बच्चे के लिए बहुलता और विविधता को समझना भी बहुत महत्वपूर्ण है। उसे अपनी अवधारणात्मक संरचनाएँ निर्मित करते समय इन सभी बातों को ध्यान में रखना जरूरी है। ऐसा विश्लेषण केवल विस्तृत वर्णनों को सुलभ कराकर हो सकता है ताकि सीखने वाला दी गई जानकारी से एक खास सम्बन्ध स्थापित कर सके। इसके लिए उपलब्ध सन्दर्भ समृद्ध और सुसम्बद्ध होना चाहिए।

> *इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ विचलित करने वाले प्रश्न पूछना सामाजिक अध्ययन की प्रकृति में ही निहित है, वहीं बहस को किस सीमा तक आगे ले जाना है, इसका उचित फैसला उसी समय केवल शिक्षक के द्वारा ही किया जा सकता है।*

यह सुनिश्चित करना भी महत्वपूर्ण होगा कि जानकारी ऐसे स्वरूप में दी जाए जो अपने आप में रोचक हो। उदाहरण के लिए, वह कहानी के रूप में या विस्तृत चित्रों के संग्रह के रूप में हो सकती है। इन चित्रों में दर्शाए जाने वाले उदाहरण बच्चे के अनुभवों के विभिन्न पहलुओं से जुड़ना चाहिए। ऐसे विवरणों से बच्चों को जोड़ने के कई तरीके हो सकते हैं, जिनमें उसके खुद के अनुभव से उनकी तुलना करना और इस पर सोचने और मनन करने के लिए प्रेरित करना शामिल हो सकते हैं। हमें उसकी कल्पना को बीते समय में ले जाने की जरूरत होती है, और इसके लिए ऐसे खूँटे चाहिए

जिनके सहारे पुराने कालों के ऐसे विवरण दिए जा सकें जो बच्चे के लिए रोचक हों।

जहाँ बात बच्चे के लिए तात्कालिक टकराव वाले मुद्दे की हो तो शिक्षक सीमा रेखा कहाँ खींचेंगे?

यह तय करना तुलनात्मक दृष्टि से आसान हो सकता है कि आप भौतिक भूगोल के साथ क्या करना चाहते हैं, हालाँकि इसमें भी अमूर्तीकरण का परिमाण और उन भूक्षेत्रों का आकार जिनके लिए ये महत्वपूर्ण होते हैं, अपने आप में भयावह होते हैं। यह जानना भी सम्भव है कि गाँव के बाजार का क्या करना है या हम मुद्रा के विचार का विश्लेषण कैसे करें। परन्तु जब हम अधिशेष का सम्बन्ध असमानता की सामाजिक गतिकी से जोड़ते हैं और सम्पत्ति के संचय का, निजी जायदाद के औचित्य का, या विरासत में मिली सम्पत्ति का विश्लेषण करते हैं, तो हम सामाजिक अध्ययन की ऐसी अवधारणाएँ निर्मित कर रहे होते हैं जो अलग–अलग लोगों के लिए अलग–अलग तरीके से काम करती हैं। हम एक साथ सामाजिक विचारों के निर्माता और उनके विश्लेषक, दोनों होते हैं।

इस प्रकार कक्षा में मुक्त बहस महत्वपूर्ण, और यहाँ तक कि व्यवस्था की निन्दा करने वाली भी हो सकती है। इसी प्रकार, यदि हम भूगोल का सम्बन्ध देशों की राजनीति से, और संसाधनों के वर्चस्व और वितरण से जोड़ें, तो गैर बराबरी के ऊपर प्रश्न उठाने और स्वीकार्यता को बढ़ावा देने के बीच के मध्य मार्ग की चुनौती बारीक हो जाती है।

ऐसे शिक्षकों के अनेक उदाहरण होते हैं जो यह तो मानते हैं कि बच्चों का 'दूसरे' के बारे में सोचना और समता तथा बहुलता के मुद्दों के प्रति संवेदनशील होना जरूरी है, परन्तु जो चर्चा को आगे बढ़ाने में अपने को असमर्थ महसूस करते हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोणों के मन में गहरे तक जमे होने से संकट की स्थिति में स्कूल के लिए हस्तक्षेप करना कठिन होता है। संवाद की शुरुआत करने के लिए किसी भी प्रयास को यह जानना चाहिए कि जब समुदायों के बीच अन्तर सबसे तीव्र होते हैं उस समय भावनाएँ भी उग्र होती हैं। साथ ही, जाति के पूर्वाग्रह और पहले से बन चुकी सापेक्षिक स्थितियाँ सिर्फ तर्कसंगत बहस का मामला नहीं हो सकतीं। और, किसी भी सूरत में, कक्षा में उपस्थित बच्चों के बीच में विपन्नता और भेदभाव के बारे में बात करना आसान नहीं होता।

इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ विचलित करने वाले प्रश्न पूछना सामाजिक अध्ययन की प्रकृति में ही निहित है, वहीं बहस को किस सीमा तक आगे ले जाना है, इसका उचित फैसला उसी समय केवल शिक्षक के द्वारा ही किया जा सकता है।

क्या पाठ्यक्रम के बारे में एक समेकित बहुविषयी दृष्टिकोण हो सकता है, या पृथक विषयों पर आधारित कार्यक्रम की आवश्यकता है?

सामाजिक अध्ययन पढ़ाने के सिलसिले में हमें समेकित बनाम विषय–आधारित कार्यक्रमों की पड़ताल करना भी जरूरी है। समेकित कार्यक्रम के पक्ष में तर्क यह है कि बच्चा यथार्थ जगत को उसकी समग्रता में देखता है। इसलिए उसका विवरण भी अलग–अलग विषयों में बँटा होने के बजाय अखण्ड होना चाहिए। यह अतिवादी दृष्टिकोण ऐसा सुझाव देता हुआ प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण कार्यक्रम अलग–अलग विषयों पर आधारित अवधारणाओं के स्पष्ट विकास के बजाय एक भेदरहित विचारसूत्र की तरह विकसित किया जाए।

एक विचारसूत्र–आधारित प्रस्तुतिकरण के चरम समर्थक अक्सर उन तत्वों को सुनिश्चित करना भूल जाते हैं जो प्राथमिक स्कूल को आगे के विकास से जोड़ते हैं। प्रारम्भिक स्कूलों के कार्यक्रमों का एक खास विषय–उन्मुख रुझान होता है जो माध्यमिक कक्षाओं की ओर बढ़ने पर बढ़ता जाता है। उदाहरण के लिए, इस बात की अपेक्षा साफ प्रतीत होती है कि बच्चे के ऊपरी प्राथमिक कक्षाओं में पहुँचने तक उसे नक्शे पढ़ने में समर्थ हो जाना चाहिए, और इसलिए बच्चे में यह योग्यता विकसित करने में मदद करने वाला कार्यक्रम होना चाहिए। लेकिन इसका अपने आप होना किसी एक या दूसरे विचारसूत्र पर नहीं छोड़ा जा सकता।

इसी प्रकार, इतिहास का महत्व समझने के लिए प्राथमिक स्कूल के बच्चे को काल की और उसे अपनी गतिविधि से जोड़ने की समझ होना चाहिए। किसी भी विकसित की जाने वाली विषयवस्तु का आधार यह निष्कर्ष होना चाहिए कि एक ऐतिहासिक समयरेखा का होना आपके लिए जरूरी है। इसके लिए विशेष विषय के अमूर्तीकरण के ऐसे स्तर की आवश्यकता होती है जो एक समेकित विचारसूत्र–आधारित पद्धति के अन्तर्गत विकसित नहीं होगा।

सामग्री का समेकित होना इसे बच्चे के लिए अधिक रोचक बना सकता है। परन्तु यह अपने आप में लक्ष्य नहीं हो सकता। यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि औपचारिक शिक्षा बच्चे को समग्र यथार्थ को समझने और उसका कई दृष्टियों से विश्लेषण करने में मदद करने के लिए होती है, और इसके लिए पृथक विषयों पर आधारित कार्यक्रम आवश्यक है।

ग. अन्तिम टिप्पणी

इस लेख में उठाए गए सभी सवालों के उत्तर हमारे पास नहीं हैं; वे सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम विकसित करने के संघर्ष का हिस्सा

हैं। पूरे शैक्षिक समुदाय में, खासकर प्राथमिक स्कूल शिक्षकों और पाठ्यपुस्तकों लेखकों के बीच सामाजिक अध्ययन के मुद्दों की व्यापक समझ विकसित करने की जरूरत है, ताकि वे कक्षा की गतिविधियों को उपयुक्त जानकारी से समृद्ध बना सकें।

लेखक की ओर से आभार

इस लेख को व्यवस्थित और सम्पादित करने में सहायता के लिए मैं अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के आनंद स्वामीनाथन और विद्या भवन की महिमा सिंह के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहूँगा।

हृदयकांत दीवान (हार्डी) *एकलव्य के संस्थापक समूह के एक सदस्य हैं और वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के संगठन सचिव एवं शैक्षणिक सलाहकार हैं। वे शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न पक्षों पर विभिन्न तरीकों से पिछले 35 वर्षों से कार्य कर रहे हैं। विशेष रूप से वे शैक्षणिक नवाचार तथा राज्य की शैक्षणिक व्यवस्थाओं में संशोधन के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे इस vbsudr@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*